SHODH SAMAGAM

ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)

दलित महिला कहानी लेखन में आदिवासी समस्या

रंजीत कुमार निषाद, शोधार्थी, हिंदी विभाग,
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र, भारत

ORIGINAL ARTICLE

Corresponding Author
रंजीत कुमार निषाद, शोधार्थी, हिंदी विभाग,
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय,
वर्धा, महाराष्ट्र, भारत

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 02/12/2020
Revised on : -----
Accepted on : 09/12/2020
Plagiarism : 00% on 02/12/2020

Plagiarism Checker X Originality Report
Similarity Found: 0%

Date: Wednesday, December 02, 2020
Statistics: 9 words Plagiarized / 3050 Total words
Remarks: No Plagiarism Detected - Your Document is Healthy.

nfyr efgyk dgkuh ys[ku esa vkfnoklh leL;k oafpr leqnk; dh ihM+k] nnZ] 'kks"k.k dks fy[kus ;k O;ä djus ds fy, okXtky tky dh mruh t:jr ugha ftruh LokuqHkwfr dh gksrh gS] ftls ,d ihfM+r] 'kksf"kr tekr eglwl dj ldrh gSA nfyr efgyk dFkkdkjksa us oafpr 'kksf"kr tuleqnk; dks vius ys[ku dk fo"k; cuk;k gSA muds ljksdkjksa rFkk mldh O;kidrk ds lanHkZ esa dgkuh vkykspd 'kaHkq xqIr us fy[kk gSa& Þ,d lgh nfyr psruk ds fodkl ds Lo:i dh igpku njvly bl ckr ls gks gksxh fd og ,d O;kid la?k"kZ'khyrk dh vk/kkj Hkwfe xzg.k

शोध सार

वंचित समुदाय की पीड़ा, दर्द, शोषण को लिखने या व्यक्त करने के लिए वाग्जाल जाल की उतनी जरूरत नहीं, जितनी स्वानुभूति की होती है, जिसे एक पीड़ित, शोषित जमात महसूस कर सकती है। दलित महिला कथाकारों ने वंचित शोषित जनसमुदाय को अपने लेखन का विषय बनाया है। उनके सरोकारों तथा उसकी व्यापकता के संदर्भ में कहानी आलोचक शंभु गुप्त ने लिखा हैं– "एक सही दलित चेतना के विकास के स्वरूप की पहचान दरअसल इस बात से हो होगी कि वह एक व्यापक संघर्षशीलता की आधार भूमि ग्रहण करें। वह अपनी जातिवादी सीमाबद्धता छोड़कर अपने जैसे अन्य दलित–दमित–शोषित तबकों को अपने साथ लें। हालांकि जातिवाद से पिंड छुड़ना उसके लिए मुश्किल है क्योंकि जातिगत शोषण इसका मूल उत्स है, लेकिन मैं जातिगत शोषण से नहीं जातिगत कुंठाओं और सीमाओं से मुक्ति की बात कर रहा हूँ।"[1] उक्त बातों पर दलित महिला लेखन खरा उतरता है। दलित साहित्य केवल खरा साहित्य ही नहीं है अपितु एक आंदोलन भी है जो समूचे वंचित जन समुदाय को आत्मसात करता हुआ आगे बढ़ रहा है। वंचित समुदाय के शोषण की जड़े नई नहीं है। उनकी पड़ताल करने पर हम पाते हैं कि वह सदियों से वंचित जाति, समुदाय, नस्ल, रंग, लिंग आदि आधार पर शोषण का शिकार होता आया है। ऐसा नहीं है कि इस परंपरा का पुरजोर विरोध नहीं हुआ, सबसे पहले वंचित समुदाय के लिए 'तथागत बुद्ध' ने आवाज उठाई। इसके बाद समय–समय पर शोषणकारी नीतियों का विरोध नाथ–सिद्ध, कबीर, रैदास, फुले, बाबासाहेब अंबेडकर आदि ने किया है। सभी विद्वानों ने अपने समुदाय की आवाज को बुलंद किया। आज भी ऐसा नहीं कहा जा सकता कि वंचित समुदाय ने इन दमनकारी नीतियों से मुक्ति हासिल कर ली है। अपनी कुटिल नीति और छद्म चरित्र के बल पर आज भी न्याय व समता प्रिय जनमानस में आपसी द्वेष का विष घुला हुआ है।

मुख्य शब्द

दलित महिला, आदिवासी, शोषण, जातिवाद।

वंचित समुदाय की पीड़ा, दर्द, शोषण को लिखने या व्यक्त करने के लिए वाग्जाल जाल की उतनी जरूरत नहीं जितनी स्वानुभूति की होती है, जिसे एक पीड़ित, शोषित जमात महसूस कर सकती है। दलित महिला कथाकारों ने वंचित शोषित जनसमुदाय को अपने लेखन का विषय बनाया है। उनके सरोकारों तथा उसकी व्यापकता के संदर्भ में कहानी आलोचक शंभु गुप्त ने लिखा हैं: "एक सही दलित चेतना के विकास के स्वरूप की पहचान दरअसल इस बात से हो होगी कि वह एक व्यापक संघर्षशीलता की आधार भूमि ग्रहण करें। वह अपनी जातिवादी सीमाबद्धता छोड़कर अपने जैसे अन्य दलित–दमित–शोषित तबकों को अपने साथ लें। हालांकि जातिवाद से पिंड छुड़ना उसके लिए मुश्किल है क्योंकि जातिगत शोषण इसका मूल उत्स है, लेकिन मैं जातिगत शोषण से नहीं जातिगत कुंठाओं और सीमाओं से मुक्ति की बात कर रहा हूँ।" उक्त बातों पर दलित महिला लेखन खरा उतरता है। दलित साहित्य केवल खरा साहित्य ही नहीं है अपितु एक आंदोलन भी है, जो समूचे वंचित जन समुदाय को आत्मसात करता हुआ आगे बढ़ रहा है। वंचित समुदाय के शोषण की जड़े नई नहीं है। उनकी पड़ताल करने पर हम पाते हैं कि वह सदियों से वंचित जाति, समुदाय, नस्ल, रंग, लिंग आदि आधार पर शोषण का शिकार होता आया है। ऐसा नहीं है कि इस परंपरा का पुरजोर विरोध नहीं हुआ, सबसे पहले वंचित समुदाय के लिए 'तथागत बुद्ध' ने आवाज उठाई। इसके बाद समय–समय पर शोषणकारी नीतियों का विरोध नाथ–सिद्ध, कबीर, रैदास, फुले, बाबासाहेब अंबेडकर आदि ने किया है। सभी विद्वानों ने अपने समुदाय की आवाज को बुलंद किया। आज भी ऐसा नहीं कहा जा सकता कि वंचित समुदाय ने इन दमनकारी नीतियों से मुक्ति हासिल कर ली है। अपनी कुटिल नीति और छद्म चरित्र के बल पर आज भी न्याय व समता प्रिय जनमानस में आपसी द्वेष का विष घुला हुआ है।

दलित चिंतन के आधार बिंदु डॉ. अम्बेडर की विचारधारा है जो 'सर्वजन हिताय' की नियति के रूप में फलित हुई है। इस कारण दलित महिला लेखन समूचे शोषित समुदाय जिसमें दलित, आदिवासी, महिला, किसान, मजदूर आदि के लिए समान रूप से विचार किया जाता है। किसी भी शोषित समुदाय के साथ पक्षपात किए बगैर दलित महिलाओं ने सभी वर्गों की समस्याओं को अपने साहित्य लेखन में स्थान दिया है। ऐसे में आदिवासियों की व्यापक समस्या दलित महिला लेखन में कैसे अछूती रह सकती है। दलित साहित्य केवल दलितों की समस्या से चिंतित नहीं है अपितु संपूर्ण भारतीय परिदृश्य में हो रहे दमन अत्याचार का समग्र चित्रण इसके चिंतन के बृहत्तर फलक में शामिल है। दलित महिला लेखन में आदिवासी समस्या भी साकार हुई है। क्योंकि दर्द और पीड़ा का रिश्ता एक दूसरे से तादात्म्य रखता है, ठीक उसी प्रकार जैसे मीरा के शब्दों में '**घायल की गति घायल समुझै।**'

दलित महिला कहानीकारों ने आदिवासी समस्या को भी कथानक का विषय वस्तु बनाया है, तथा अलग–अलग प्रसंगों में इसे अपनी कहानियों में पिरोया है। इस कड़ी में 'रजनी दिसोदिया' की माओवादी और नक्सली हमले में मारे जा रहे निर्दोष आदिवासियों की समस्या पर केन्द्रित 'ताड़का बध' एक मार्मिक कहानी है। यह कहानी अखबार में छपी छत्तीसगढ़ के नक्सली हमले में मारे गए सी. आर. पी. एफ. के जवान के इर्द गिर्द बुनी गयी है। सौमित्र नक्सली हमले में मारे गए जवान का बेटा है। जिसे बचपन से ही रोबोट की तरह बनाया जाता है, उसके मस्तिष्क में आदिवासियों के लिए दैत्य, दानव, असभ्य, बर्बर जैसी छवि निर्मित कर उनका समूल नष्ट करने के लिए मशीन की भांति तैयार किया जाता है। बचपन से ही उसमें आदिवासियों के विरुद्ध जहर भरा गया है। जिसका जिक्र करते हुए युवा कहानीकार रजनी दिसोदिया लिखती हैं कि ''सौमित्र तब केवल दस बरस का ही था तभी से उसके भीतर इन माओवादियों, नक्सलवादियों के खिलाफ जहर भरा था।'' 'ये राक्षस हैं राक्षस इनका संहार तो होना ही चाहिए वह अक्सर कहा करता था।'[2] आदिवासियों का संहार करके उसे अमन चैन कायम करना है। इसमें आदिवासी को नक्सलवादी घोषित कर निर्मम हत्या कर उनके आवास को नष्ट किया जाता है। आदिवासी शहर से सुदूर जंगल, वनांचल में निवास करते हैं। जिसमें प्राकृतिक संसाधन भरा पड़ा है। उन प्राकृतिक संसाधनों का दोहन पूंजीपति वर्ग आदिवासी बस्तियों को उजाड़कर कर रहा है। पूंजीपति वर्ग की मनसा संसाधन को हड़पने में रुचि रखती है। जब

आदिवासी समुदाय प्राकृतिक संसाधनों के दोहन का विरोध करता है, तो उसे गुनहगार साबित किया जाता है। वस्तुतः भद्र पुरुष अपने रास्ते के रोड़े उखाड़ फेंकने में आमद हैं, उनका एक मात्र उद्देश्य संसाधन है। उनकी इस चिंता में सत्ता भी शामिल होती है, जिसके सामने आदिवासी समुदाय सीमित विकल्प रह जाता है। इस सीमित विकल्प की चर्चा करते हुए आदिवासी सत्ता के संपादकीय में के. आर. शाह ने लिखा है कि, "जब अस्तित्व पूरी तरह संकट से घिर जाता है तब उचित अनुचित को दरकिनार कर बचने व बचाने के तमाम उपायों को स्वीकार्य और अंगीकार करना ही अंतिम विकल्प होता है। जब दुश्मन की सेना किले को भेद कर भीतर प्रवेश कर जाती है तब जीवन असुरक्षित हो जाता है। उस समय एक ही विकल्प शेष रह जाता है 'आत्मसमर्पण' या फिर 'युद्ध'। देश में आदिवासी समाज आज इसी दौर से गुजर रहा है।"[3] अपने अस्तित्व के संकट से जूझ रहे आदिवासी समुदाय जल, जंगल, जमीन की रक्षा के लिए हथियारबंद हो जाता है, तो उसे नक्सली कहकर उनका संहार किया जाता है। तथाकथित अट्टालिकाओं में निवास करने वाले सामंती और पूंजीपति गरीब आदिवासियों को आदमी मानने को तैयार नहीं हैं। इनकी नजर में यह जंगली लोग असभ्य और बर्बर हैं। आदिवासी कोई विदेशी आक्रांता नहीं है जिनके खिलाफ जहर बोया जा रहा है। इन्हें किसने पैदा किया इस विषय पर चिंता न करके, इनका विनाश कैसे किया इस पर सरकारें विचार करती हैं, ताकि प्राकृतिक संसाधन का सरलता से दोहन किया जा सके। सरकार ने पूँजीपतियों को जल, जंगल, जमीन को परियोजना के नाम पर प्राकृतिक संसाधनों का दोहन करने की खुली छूट दे रखी है।

नक्सलवादी आंदोलनों का समाधान हिंसा या बदले की भावना से कभी संभव नहीं होगा, इस तरह के मामले को सुलझाने के लिए सबसे पहले मानवीय गरिमा को महत्त्व देना होगा। सत्ताधारी और पूंजीपति के खेल में सेना और नक्सली की आहुति होती है और लाभ तीसरा उठाता है। इसका स्पष्ट उल्लेख करते हुए रजनी दिसोदिया लिखती हैं– "सौमित्र की चिंता मुझे भी है, इस जंग में वह तो एक फौलादी मशीन भर है, जिसका ट्रेगर किसी और के हाथ में है। ये हाथ इतने लंबे हैं कि ये हाथ किसके हैं ये नजर नहीं आता।"[4] पूंजी और सत्ता के हाथ की कठपुतली बनती मानवता बेहद चिंता का विषय बनती जा रही हैं। आदिवासी समुदाय का बस इतना अपराध है कि उन्हें जल, जंगल, जमीन से बेहद प्यार है, जिसका वह त्याग करना नहीं चाहते और इसके खातिर अपने प्राणों की बाजी लगा देते हैं। सरकारें आंतरिक सुरक्षा के नाम पर निर्दोष आदिवासियों का नरसंहार करने के लिए अलग से बजट भी तैयार करती है। इससे स्पष्ट होता है कि सत्ता आदिवासी समुदाय के प्रति कैसा रुख अपनाती है। इन बजटों से शहीदों को आवास, गाड़ी और नौकरी तो उपलब्ध हो जाती है, परंतु जिन्हें माओवादी या नक्सली कहकर मार दिया जाता है, उन आदिवासियों के परिवारों का क्या होगा, इस बात की चिंता सरकार को नहीं है।

आदिवासियों पर सैन्य कार्यवाही कहाँ तक जायज है? क्या मानवाधिकार व कानून की इस तरह के सैन्य हमलों के लिए कोई जिम्मेदारी नहीं बनती? इसका जिक्र करते हुए लेखिका ने लिखा है कि "हमारे जांबाज सेनानियों ने माओवादियों का सफाया किया, उनके गढ़ को किया नेस्तानाबूत, अवर सोलजर्स वॉश आउट दी नेकस्लाइट्स फ्रम दी इंडिया।"[5] चिंता का विषय तो यह हैं कि आजादी के बाद भी आदिवासियों के मानवाधिकार की रक्षा सरकारें नहीं कर रही हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ का नारा सभी व्यक्तियों का सर्वांगीण विकास और सुअवसर प्रदान करना है। सभी नागरिकों को गरिमामय जीवन यापन करने का अधिकार है तो फिर आदिवासी समुदाय को इससे वंचित रखने की साजिश क्यों है?

ज्ञातव्य है कि 'ताड़का बध' कहानी में आदिवासी समुदाय की उस समस्या को चिन्हित किया है जो बेहद संवेदनशील है। जंगल, पहाड़ दुर्गम स्थल में निवास करने के कारण कोई समाज या नागरिक असभ्य या बर्बर नहीं हो सकता। पौराणिक, मिथकीय या अफवाहों के आधार पर उनका निर्मम संहार किसी तरह उचित नहीं ठहराया जा सकता, क्योंकि भारतीय संविधान सभी नागरिकों को सम्मान और गरिमामय जीवन निर्वाह करने का समान अवसर देने के लिए वचनबद्ध है। इन अधिकारों से आदिवासी समुदाय आखिर कब तक अछूता रहेगा?

डॉ. भीमराव अंबेडकर ने एक साक्षात्कार में कहा था कि "मुझे सबसे अधिक धोखा अपने पढे–लिखे लोगों ने

दिया है।" किसी भी समाज या समुदाय के उत्थान–पतन में उस समाज के शिक्षित व्यक्तियों की अहम भूमिका होती है। अपने ही समुदाय को लूट कर ठाठ से रहने के फिराक में सदैव तत्पर रहते हैं। इससे उनका तो कुछ भला हो जाता लेकिन इसका दुष्परिणाम पूरे समुदाय को भोगना पड़ता है। नीरा परमार की कहानी 'आँख का पानी' वंचित समाज में पनप रहे दलालों के चरित्र को उजागर करती है। मिंज साहब आदिवासी आरक्षण से प्रतिष्ठित उच्च पद पर कार्यरत हैं। मिंज साहब अपने मित्रों तथा सीनियर अधिकारियों को खुश कर अपना काम निकलवाने के लिए जंगली वन्य जीवों का भोग लगवाते हैं और अपनी तरक्की के लिए सीधे–साधे आदिवासी महिलाओं को उनके ऐश के साधन के रूप में प्रस्तुत करते हैं। जिसका वर्णन करते हुए नीरा परमार लिखती हैं : "वाह, ऐसे कैसे हो सकता है! चलो तुम्हारी भी ऐश करवाए देते हैं। भई अरोड़ा, यार, पक्का जान, जंगल के असली राजा हम हैं। लकड़ी दारू और लड़की, समझो कोई कमी नहीं। हमारे राज में कोई भूखा नहीं मरेगा" और उनकी वहशियाना हँसी शीशे के टुकड़ों की तरह जंगल–पहाड़ से टकरा जख्मी कर जाती है।"[6] पूँजीपतियों के बिचौलिए के रूप मिंज साहब जैसे लोगो के कारण अपने वंचित कौम के शोषण के लिए नए रास्ते ईजाद कर देते है। ऐसे लोग अपनी तरक्की के किसी स्तर तक नीचे गिर सकते है। मिंज साहब अरोड़ा को खुश करने के लिए अपनी नौकरानी को अच्छे रुपए देने का वादा करके उसकी 13 वर्षीय बेटी सनीचरी को अपने दिल्ली आवास पर काम पर ले जाने को राजी कर लेता है। सोमरा ड्राइवर मिंज साहब की हरकत से वाकिफ होता है, जिसके कारण सनीचरी को बचाते हुए कहता है– "खबरदार, कुत्ता भी अपनों को छोड़ देता है, कमीना, तू तो अपने–पराए, जात–बिरादरी, गाँव–घर किसी को नहीं चीनता, तू खाली अपना सगा है, तेरी एक ही जात है दरिंदे की जात।"[7] शोषित समुदाय को जब अपने लोगों से ही खतरा बढ़ जाए तो ऐसी परिस्थिति में वंचितों का जन जीवन और विकट हो जाता है। ऐसे सामाजिक बिचौलिए को पहचानना बेहद जरूरी है। ऐसे लोग अपने व्यक्तिगत हित में पूरे समुदाय का सौदा करने से नहीं चूकते।

हिंदू धर्म को मजबूत करने के लिए सांप्रदायिकता का सहारा लिया जाता है। जिसमें सत्ता की भी भागीदारी सुनिश्चित होती है। सांप्रदायिक तत्वों का शिकार सबसे अधिक आम जनता रही है। आदिवासी समुदाय सांप्रदायिक तत्वों दूर रहने वाला समाज है किंतु सांप्रदायिकता की वर्चस्वशाली नीतियों से आदिवासियों को भारी नुकसान होता दिख रहा है। धार्मिक हस्तक्षेप आदिवासी संस्कृति और सभ्यता को विलुप्त करने पर तुला हुआ है। हेमलता महीश्वर की 'बेदखल' कहानी आदिवासी समुदाय में हिंदू धर्म की सांप्रदायिक घुसपैठ को रेखांकित करती है। कहानी के माध्यम से हेमलता महीश्वर ने आदिवासियों को अपने पर्व–त्योहार और संस्कृति से बेदखल करने वाली सांप्रदायिक कूटनीति का पर्दा उठाने की सार्थक कोशिश की है। आदिवासी बहुल क्षेत्र में पंडितजी को स्कूल में नियुक्ति मिली है। पंडितजी आदिवासियों पर धाक जमाने के लिए उनका धार्मिकीकरण करने की सलाह स्कूल का बाबू देता है और कहता है कि – "अरे चिंता काहे की अब तो हिंदू धर्म बचाने के लिए जगह–जगह आश्रम बनने शुरू हो गए है। आदिवासियों के बीच अपनी जगह बनानी है.... माता परिवार वाले तो सुपात्र खोज रहे हैं। आप उनसे मिल लीजिए।"[8] इस प्रकार सांप्रदायिक तत्व अल्पसंख्यक वर्ग का विलय कर उन्हें और हाशिए पर पहुंचाने का काम कर रहे हैं, क्योंकि किसी भी जाति या समुदाय का विकास उसकी जड़ से काट कर नहीं किया जा सकता है। सबसे बड़ी बात यह है कि भारत की पहचान उसकी सांस्कृतिक विविधता में निहित है। किंतु सत्ता सांप्रदायिक ध्रुवीकरण कर वर्चस्व स्थापित करने में मशगुल है। पंडितजी मंदिर निर्माण कर माता परिवार द्वारा फर्जी खबर छपवाते हैं– "अरे हमारी काहे की राजा साहब का काम है यह। इक्यावन आदिवासियों की घर वापसी हुई.... मंदिर की प्राण प्रतिष्ठा का ही इंतजार था लोगों को विशेष सहयोग आपका है देखिए आपका नाम लिखा है बस ऐसे ही लगे रहिए।"[9] घर वापसी की फर्जी खबर निकाल कर आम जनता में इसके लिए माहौल तैयार किया जाता है कि वह पराए घर में हैं बाकी लोगों की तरह उनको भी घर वापसी करनी चाहिए। परंतु इसके साथ–साथ पंडितजी को माता परिवार वाले सलाह देते हैं कि– "अभी तो मूर्ति की स्थापना ही हुई थी माता परिवार वाले लोगों ने उन्हें चेताया था कि वे उन्हें सीधा सहयोग भी नहीं दे सकते क्योंकि ये लोग अनजान लोगों की दखलअंदाजी भी पसंद नहीं करते। सारी योजना पर पानी फिर जाएगा यदि एकाएक तमाम गतिविधियां शुरू कर दी तो.... ना.... ना.... धीरे में ही खीर है।"[10] इस प्रकार बेदखल कहानी आदिवादियों में सांप्रदायिक ताकतों की घुसपैठ को सहजता से बेनकाब करती है। आदिवासियों के जीवन में सांप्रदायिक धार्मिक कट्टरता जैसे विषैले जहर से आगाह करती है।

कावेरी की 'अंतर्द्वंद' कहानी आदिवासी समुदाय के जन जीवन में बाजारवादी संस्कृति के फैलाव को दर्शाती है। किस्सू जी अपने व्यक्तिगत जीवन में आदिवासी संस्कृति को बहुत महत्व देते है। बड़े अधिकारी होने पर भी अपने समुदाय और समाज से जुड़े हुए हैं। यही लोक संस्कृति में बड़े–पले है इसी वजह से जिले का मालिक और शहर में रहने पर भी अपने लोक संस्कृति से कटे नहीं है। किस्सू जी आदिवासी लोक संस्कृति विशेषताओं पर चर्चा करते हुए शालू जी से कहते है– "हाँ मैडम, इसलिए तो मैं आपको अपने गाँव ले आया हूँ। यहाँ की लोक संस्कृति अभी भी जीवित है। हर त्यौहार में मैं यहां लाऊँगा। मुझे भी अपना गाँव पसंद है। इसी गाँव की मिट्टी में पला, बड़ा हुआ। मैट्रिक तक की पढ़ाई पूरी हुई।"[11] लेकिन उनके परिवार के लोग ही बाजारवाद की लुभावन संस्कृति की गिरफ्त में हैं। भूमंडलीकरण और पूंजीवाद आदिवासी समुदाय की संस्कृति को पूरी तरह नष्ट करने पर आमद है। जिसके फलस्वरूप आदिवासियों में स्वच्छंदता की जगह छल–कपट घर करता जा रहा है। जिसका जिक्र अपने अन्तर्मन में करती हुई शालू सोचती हैं – "आदिवासी समाज तो स्वच्छंद है। आपस में प्रेम से लोग मिलते हैं परंतु इनका परिवार शहर में रहकर अपनी संस्कृति को भूल गया है। द्वेष और संदेह इनके अंदर घर कर गए हैं। किस्सू जी चाहकर भी इस पर कोई प्रतिक्रिया नहीं कर पाए। वे मौन थे। पता नहीं उनके सरल हृदय में कौन सा विचार उठ रहा था।"[12] बाजारवाद ने आदिवासी जीवन में घुसपैठ कर उनकी स्वच्छंदता में लोभ, मोह, ईर्ष्या जैसे विकारों को भर दिया है। डॉ. सुनील कुमार 'सुमन' आदिवासी लोक संस्कृति की स्थिति के संदर्भ में अपने एक व्यक्तव्य में कहते हैं – "आदिवासी अपनी सभ्यता और लोक संस्कृति को दिखाने के लिए कोई विशेष आयोजन नहीं करता है, जब वह चलता है तो उसकी चाल में ही नृत्य होता है। जब वह बोलता है तो उसमें गीत–संगीत फुट पड़ते हैं।" कहने का तात्पर्य यह है कि आदिवासीयत आदिवासियों के प्रत्येक रुझान में बसी होती है। किस्सू जी इसी आदिवासी परंपरा के वाहक हैं उनका आदिवासीयत वाला व्यक्तित्व शालू मैडम को आकर्षित करता है। निश्छल आकर्षण को किस्सू का परिवार नाजायज संबंध की शंकालु दृष्टि से देखता है और घरेलू कलह का जड़ बनाता जाता है। कावेरी ने इस कहानी के माध्यम से आदिवासियों के जीवन में बाजारवाद के दुष्परिणाम को दर्शाया है।

किसी मनुष्य या समुदाय के प्रति संवेदनशील होना एक सकारात्मक मानवीय पक्ष है। यह एक सजग लेखक के लिए सबसे महत्वपूर्ण भी है और हाशिए के समाज में चिंतन अगर गैर दलित आदिवासी करता है, तो लेखक की सदाशयता ही मानी जाएगी, किंतु केवल व्यवसायिक या आत्म सम्मान के लिए किसी विमर्श पर चिंतन उस समुदाय के साथ न्याय नहीं होगा। ऐसे ही कथनी और करनी में विरोधाभास रखने वाली आदिवासी जीवन की गैरआदिवासी लेखिका है, राधिका बंसल को केंद्र में रखकर रजनी तिलक 'अस्मितावादी' कहानी की जमीन तैयार की हैं। राधिका बंसल का आदिवासी जल, जंगल और जमीन को केन्द्रित 18 वें कहानी संग्रह का विमोचन हुआ। आलोचकों ने इसकी भूरी–भूरी प्रशंसा की। इसके बाद बंसल के आभार उद्‌बोधन में उनके बनावटी लेखकीय व्यक्तित्व का वर्णन करते हुए रजनी तिलक लिखती है – "वे जेवरों से लदी शर्मीली दुल्हन सी उठी धीरे–धीरे मंच पर आई तो वे मुस्कुरा कर बोली, मेरी रचनाएं स्वयं मेरी उंगली पकड़ कर मुझे अपने लोक में ले जाती हैं। मैंने जीवन भर आदिवासी समाज में स्वयं को खड़े पाया है। उनसे मैंने बहुत कुछ सीखा है प्रकृति से उनका प्रेम उनकी संस्कृति, ताड़ी एवं कर्मा नृत्य की मैं बहुत कायल हूँ... मैं उनके संघर्षो को सैल्यूट करती हूँ... तालियों की गड़गड़ाहट और फोटोग्राफरों की बिजली–सी चमक के बीच स्वयं संभलती हुई वे मंच से नीचे उतर आयी।"[13] इस प्रकार का सतही चिंतन और विमर्श के नाम पर अपना रोजगार परख लेखन से हाशिए के समाज का कल्याण असंभव है। 'अस्मितावादी' कहानी के माध्यम से रजनी तिलक व्यावसायिक विमर्शकारों पर तीखा व्यंग्य करती हैं, तथा उनके करनी और कथनी की अस्पष्टता को बखूबी से उजागर करती हैं। मंच से आदिवासी जीवन के संघर्षों पर लंबी–लंबी भाषण–बाजी करने वाली राधिका बंसल अपने घर दो–दो आदिवासी लड़कियों को नौकर बनाकर रखा है। उनकी गरीबी मजबूरी का फायदा उठाकर क्षमता से अधिक काम कराती है, छोटी–छोटी बातों पर उन्हें डाटती–फटकारती रहती हैं। व्याहरिक जीवन में आदिवासियों के प्रति अपने रवैये को लेकर चर्चा में रहने वाली लेखिका के चेहरे का नकाब उतारते हुए रजनी तिलक लिखती हैं – "तभी मैडम को दांतों की ग्राई में कंकड़ का आभास हुआ। मुंह से उगलते हुए थू करके बिगड़ गयी... मजा खराब कर दिया... क्या दाल के कंकड़ बीने नहीं ? कितनी बार समझाया।

जंगली कहीं की... कटोरी की दाल उनके मुंह पर उलेड़ दी... बालाएँ... दबी सी... सहमी... सी वहीं खड़ी रहीं। चेहरे की दाल टपक कर जमीन पर चुनने लगी। आदिवासी अस्मिता आदिवासी संस्कृति राधिका बंसल के घर की शोभा जो थी।"[14] दलित महिला कथाकारों ने हाशिए की आवाज को जाति, धर्म, समुदाय की सीमा से बाहर निकल कर उठाया है। दलित महिला कहानी लेखन में आदिवासी जन–जीवन की समस्या भी अछूती नहीं रही है। इन लेखिकाओं के पास विजन की कमी नहीं है। वंचित समुदाय के सभी वर्गों दलित, महिला, मजदूर, किसान, या जनजाति समुदाय के मुद्दे पर इन लेखिकाओं ने अपनी लेखनी चलायी है।

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में यह कहने में कोई गुरेज नहीं है कि दलित महिला कहानी लेखन अपने अल्पकालीन समयावधि के बावजूद एक सशक्त विधा के रूप में हिंदी साहित्य में उपस्थिती दर्ज कर रहा है। अपने अल्पकालीन समय में ही व्यापक विषयों को अपने विचार बिन्दु को केंद्र बनाया है। दलित महिला कथाकारों ने हाशिए की आवाज को जाति, धर्म, समुदाय की सीमा से बाहर निकल कर उठाया है। दलित महिला कहानी लेखन में आदिवासी जन जीवन की समस्या भी अछूती नहीं रही है। इन लेखिकाओं के पास विजन (दृष्टि) की कमी नहीं है। वंचित समुदाय के सभी वर्गों दलित, महिला, मजदूर, किसान, या जनजाति समुदाय के मुद्दे पर इन लेखिकाओं ने अपनी लेखनी चलायी है।

संदर्भ सूची

1. शर्मा, कुमकुम. (सितंबर–अक्तूबर 2002). उत्तर–प्रदेश (दलित साहित्य विशेषांक). लखनऊ. पृ. 81
2. शाह, के. आर. संपादक. (सितंबर 2016). *आदिवासी सत्ता.* दुर्ग (छतीसगढ़). पृ. 3
3. दिसोदिया, रजनी. (2014), *चारपाई.* स्वराज प्रकाशन. दिल्ली, पृ. 93
4. वही. पृ. 95
5. वही. पृ.102
6. परमार, नीरा. (2018). महक. एजुकेशनल बुक सर्विस, दिल्ली. पृ. 57
7. वही. पृ. 63
8. चौहान, कैलाश चंद. सं. (अगस्त–अक्तूबर 2013). *कदम,* दिल्ली. पृ. 26
9. वही. पृ. 27
10. वही. 28
11. चौहान, कैलाश चंद. सं. (अगस्त–अक्तूबर 2015). *कदम,* दिल्ली. पृ.12
12. वही. पृ.
13. तिलक, रजनी. (2018). *बेस्ट ऑफ करावा चौथ.* अधिकरण प्रकाशन, दिल्ली. पृ. 14
14. वही. पृ. 14
15. यादव, चौथीराम. (2014). उत्तरशती के विमर्श और हाशिए का समाज. अनामिका प्रकाशन, दिल्ली
16. मानस, मुकेश (2019). दलित साहित्य के बुनियादी सरोकार. अधिकरण प्रकाशन, दिल्ली
17. तिवारी, बजरंग बिहारी (2015). दलित साहित्य रू एक अंतर्यात्रा. नावरुण प्रकाशन, दिल्ली

****